श्रीत्रिदण्डिदेवग्रन्थमालाया एकादशं प्रसूनम् ॥

॥ श्रीः ॥

अन्वर्थाकोपेतम्

वरदवल्लभा स्तोत्रम् ॥

तथा च

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य सत्संप्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवदनन्त-पादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य-स्वामि कृत "भावप्रकाशिका"ख्य-भाषाटीका समलंकृतम् ।

तदिदम्-

श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदांत प्रवर्तकाचार्य पदवाक्यप्रमाणज्ञश्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ श्रीसंप्रदायप्रवर्द्धनबद्धकक्ष-निखिलसिद्धिजन्यफला भुवनकरामलकीकृत ब्रह्मतत्त्व भुवन भवभय बुधजनसेवित पुरुषोत्तमक्षेत्रस्थ श्रीराजगो-श्री १००८ पूज्यपाद गदाधराचार्य स्वामि-वोन्नत्यै स्वीये श्रीरघुनन्दन मुद्रणालये स्वशिष्य द्वारा मुद्रयित्वा प्रकाशितम् । सम्वत् १९९५ वि० पुरी

प्रथमसंस्करणम् १०००

भूमिका

प्रिय सज्जनों !

"वरदवल्लभास्तोत्र" के निर्माण कर्ता श्रीयामुनाचार्य्य स्वामीजीका आविर्भाव—

धात्वब्दे कर्कटेमासे पौर्णमास्यां भृगोर्दिने ।
मित्रभेरंगनायक्यां श्रीसिंहासनभागतः ॥
प्रपन्ना. अ. १११ श्लो. ७ ॥
मतिमानीश्वरमुनेर्जज्ञे कश्चित्सुतो महान् ॥ ८ ॥

धातुनामके संवत्सर श्रावणमास पूर्णिमा तिथि शुक्रवार और अनुराधा नक्षत्र आनेपर रंगनायकी देवी में श्री सिंहासनकाभागसे ईश्वर मुनिका कोई महान् मतिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ। ॥ ७ ॥ ८ ॥ इसके अनुसार दक्षिण भारत वीर नारायणपुरमें हुआ था । उनका सब वैदिक संस्कार राममिश्र स्वामीजी कियेथे । और वह कुशाग्रधी यामुनमुनि वेदवेदांगको थोडे दिनमें पढकर महाभाष्य भट्ट के पासमें शास्त्रोंको अध्ययन करते थे । और चोलमहीपालका पुरोहित अक्कियालवान् विपश्चित् सब विद्वानोंको पराजय कर प्रतिवर्ष दशवंध कर लेता था वह कर नहीं देनेसे दूत महाभाष्यभट्टके अत्यन्त दुःख दियें तव यामुनमुनि पुछकर राजपुरोहितका सब वृत्तांत जानकर—

न वयं कवयस्तुकेवलं न वयं केवलतंत्रपारगाः ।
अपि तु प्रतिवादिभीकरप्रकटाटोपविपाटनक्षमाः ॥
प्रप. अ. १११ श्लो. ३५ ।

इस श्लोकको पत्रमें लिखकर उन दूतोंसे राजपुरोहितकेपास भेजवाये । उस पत्रको देखकर व्याकुल हो राजपुरोहित राजा से कहाकि बारहवर्षका लडका मुझको कुछ नहीं समझता है इससे उसको यहां बुलाकर योग्य दण्ड देना चाहिये । इस बातको सुनकर चोलराजा बुलानेके लिये दूतोंको भेजा, किंतु या मुनमुनि अनादर जानकर राजाकेपास नहीं आयें तो फिरसे बहुमान के साथ राजा शिबिकाको पठाया । तब शिविकारुढ या मुनाचार्य्य राजसभामें गयें । तथा उनका आगमन सुनकर राजपुरोहित भी वहांपरआया । तब यामुनमुनि राज सभामें—

आशैलादद्रिकन्याचरणकिसलयन्यासधन्योपकंठा-
दारक्षोनीतसीतामुखकमलसमुल्लासहेतोश्च सेतोः ।
आच प्राच्यप्रतीच्यक्षितिधरयुगलादर्कचंद्रावतंसान्-
मीमांसाशास्त्रयुग्मश्रमविमलमना मृग्यतां मादृशोऽन्यः
॥ प्रप. अ. १११ श्लो. ५० ॥

इस श्लोकको लिखकर ध्वजवादियें तब उनसे शास्त्रार्थ करनेके

लिये राजपुरोहित आया तो या मुनमुनि राजासे कहें कि शीघ्र मध्यस्थको बुलाइये। इसके बाद सब मध्यस्थ राजाकी आज्ञासे उस सभामें एकत्रित हुवें। इतनेहीं में राजाकी महिषी चोलराजसे कही की यदि यह बालक पराजय हो जायेगा तो मैं छव मास आपकी दासी होजाऊंगी। और राजा कहाकी यदि मेरा पुरोहित पराजय होजायेगा तो तेरेलिये आधाराज्य मैं देदुंगा। इस प्रकार के राजा और रानी में प्रतिज्ञा हुई। इसके बाद राजपुरोहित सबके सामने कहा की मैं तीन बात कहता हूं इसको तुम खण्डन करो अथवा तुम तीन बात कहो मैं खण्डन करताहूं। तथा जो खण्डन नहींकरेगा उसका पराजय मानाजायेगा, और उसका शिरपर सब लोग ताडन करेंगे। इस प्रकारके प्रतिज्ञा करनेपर यामुनमुनि कहेंकी—

अवन्ध्या किलते माता विद्वन् राजपुरोहित।
एष राजा सार्वभौमो राजपत्नी पतिव्रता॥
प्रप. अ. १११ श्लो. ८०॥

इन तीन लौकिक बातों को सुनकर राजपुरोहित चूप रहगया तब पुनः यामुनमुनि कहें की—

वक्ष्यामि वैदिकगिरश्चोत्तमाधममध्यमाः।
सर्वशास्त्रस्थिताः सर्वा विबुधेंद्रादिसंमताः॥
प्रप. अ. १११ श्लो. ८३.॥

इस श्लोकको भी सुनकर चूप रहगया तव यामुनाचार्यजी कहेंकि तुमनहीं निर्णय कियाथा कि पराजय होनेवालेका शिरपर ताडन किया जायेगा सो तो राजपुरोहित और वृद्ध होनेसे नहीं मैं करता हूं। इसके वाद सव लोग ब्रह्मरथपर वैठाकर या मुनमुनिको महोत्सव मनायें और राजा—

अर्धराज्यं ददौ राजा यामुनाय विपश्चिते।
विवादसमये दत्तं भार्ययाचोदितस्तदा॥

श्लो० ९९।

इसके अनुसार आधाराज्य यामुनमुनिके लिये दे दिया। इसके वाद ईश्वरमुनि या मुनमुनिका विवाह करिके कुच्छ दिनें में परंपद चलेगये, तो—

पुत्रद्वयं तदा जज्ञे यामुनार्याय विश्रुतम्।
वररंगाभिधोज्येष्ठो शोट्टपूर्णो परस्तयोः॥ १०९॥

यामुनमुनिके वररंग और शोट्टपूर्ण नामके दो पुत्र हुवें, उन लोगोंके सव संस्कार करिके प्रजाको पालन करते हुवे महेंद्रके समान सुखसे ठहरें। इसके वाद राम मिश्र स्वामीजी छव महीना अलर्कके शाक या मुनमुनिके लिये समर्पण कियें और वीचमें चारदिन नहीं लाये, फिर पांचवा दिन शाकलायें। तव या मुनमुनि पाचकसे पुछें कि यह शाक किसने लाया ? पाचक कहा कि एक वृद्ध ब्राह्मण

लातेहैं। पुनः यामुनमुनि कहें कि यदि शाकलेकर वह वृद्ध आवें तो मेरे पास ले आना। पाचक सवेरे रामीमश्र स्वामीजी को यामुनमुनिके पास लेगया । और यामुनमुनि अच्छि प्रकारसे सत्कार करिके हाथ जोडकर कहें किहे विप्रेंद्र ! जो धन तुम चाहते हो सो मांगों मैं तेरे लिये अवश्य दूंगा ॥ इसके वाद राममिश्र स्वामीजी कहें कि आपका पूर्वजनाथमुनि स्वामीजीका धन मेरे पास है, उसको दिखानेके लिये आपका पासमें मैं आया हूं तो आने जानेमें मुझे रोकावट नहीं यही चाहताहुं । यामुनमुीन द्वारपालोंको वुलाकर तुरंतहीं आज्ञादियें कि इस महानुभावको आने जानेमें तुमलोग नहीं रोकना। इसके वाद नित्य प्रति आकर राममिश्र स्वामीजी—

सम्यगष्टादशाध्यायीमष्टादशादिनैस्तदा ।
स तस्मै यामुनार्याथ रहस्येवमबोधयत् ॥

प्रपन्न. अ. ११२ श्लो. ५४ ।

अच्छि प्रकार से अठारहदिनमें अठारह अध्याय भगवद्गीताको एकांतमें यामुनमुनिके लिये समझायें ॥ ५४ ॥ उस श्रवणसे उत्तरोत्तर ज्ञान भक्ति और वैराग्य वढनेलगा । इसके बाद यामुनमुनि स्त्री पुत्र धनादिको परित्याग कर श्रीरंगम् को चलेगयें और वहांपर—

संन्यासं विदधे सम्यग्यामुनार्यो महायशाः ॥

प्रप. अ. ११२ श्लो ६० ॥

इसके अनुसार संन्यास ग्रहण करलियें। इसके बाद बहुतसे सज्जनलोग उनके चरणारविंदके आश्रित हुवें। और यामुनमुनि अनंत शयनादिक दिव्यदेशों की यात्रा करिके--

स्तोत्ररत्नं चतुःश्लोकीं वेदप्रामाण्यमेव च।
सिद्धित्रयं च वेदांतिन् श्रीगीतासंग्रहं महान्॥

प्रप. अ. ११६ श्लो. १६।

यामुनो लोकरक्षार्थमकरोद्ग्रंथपञ्चकम्॥ १७॥

स्तोत्ररत्न १।

स्तोत्ररत्न १, चतुःश्लोकी अर्थात् वरदवल्लभा २, वेद प्रामाण्य ३, सिद्धित्रय ४, और गीतार्थ संग्रह ५, इन पांच ग्रंथोंके लोककी रक्षाके लिये यामुनाचार्यजी बनायें॥ १७॥ इसके बाद--

पञ्चविंशतिसंयुक्तं वत्सराणां शतं गतम्।
त्यक्ताभिलाषो मेदिन्यां यातुकामः परंपदम्॥

प्रप. अ ११६ श्लो० १८।

एकसौपचीश वर्षके आयु होनेपर मेदिनीमें अभिलाषा छोडकर परमपद जानेकी इच्छा कियें॥ १८॥ और---

वृषभमासे षष्ठे-अंशे श्रवणनक्षत्रेऽभिजिन्मुहूर्तें सूरीणां शेषं स्वीकृत्य— ततः पद्मासने स्थित्वा श्रीराममिश्रं ध्यायन्—ब्रह्मरन्ध्रेण यामुनाचार्य्यः

परमपदमगात् ॥ वार्त्तामा० वा० ४१९ ॥

जेठमहीना छठवां अंश श्रवणनक्षत्र अभिजिन्मुहूर्तमें सूरियोंके शेषको स्वीकार करके तिसके बाद पद्मासनमें स्थित होकर श्रीराममिश्र स्वामीजीको ध्यन करते हुए-ब्रह्मरन्ध्रमार्गसे यामुनाचार्य स्वामीजी परमपदको प्राप्त करलियें ।। ४१९ ॥ इस पूर्वोक्त महानुभावकृत यह स्तोत्र इतना सुप्रसिद्ध और माननीय है कि लाखों नरनारी इस स्तोत्रको कण्ठाग्र करके प्रतिदिन पाठ करते हैं और उसके द्वारा अपने मनोभिलषित वस्तुको प्राप्त करते हैं। और इसकी उपादेयता-पर मुग्ध होकर कई विद्वानोंने इसकी व्याख्या और भाषाटीका लिखी है। परंतु अत्यंत वृहत्या अति संक्षिप्त होजानेसे वे टीकायें सर्वोपयोगिनी नहीं है। इस बातको विचार कर, जव पैदल तीर्थ यात्रा करते हुवे श्री पूज्यपाद महामना विष्वक्सेनाचार्य त्रिदण्डी स्वामीजी महाराज पुरी राजगोपाल मठमें पधारें तब श्री जगन्नाथ पुरी निवासी समस्त भागवतबृन्द आकर श्रीस्वामीजी कि सन्नि-धिमें विज्ञापन कियें कि श्रीमान् की वनाइ हुई जो स्तोत्ररत्न की टीका "भावप्रकाशिका" है उससे दासलोगोंका बहुतही उपकार हुआ। जगज्जननी के पुरुषकारभूत "वरदवल्लभास्तोत्र" का भी यदि "भाव प्रकाशिका" टीका हो जाती तो वहुत ही अच्छा हो जाता। इस वाक्यको सुनकर श्रद्धेय स्वामीजी कहेंकि यदि भागवतों की दया• रहेगी तो शीघ्रही पूर्वोक्त टीका हो जायगी। जिसका फलस्वरुप "भावप्रकाशिका" समलकृत वरदवल्लभा स्तोत्र सज्जनोंके करार विंदमें प्रात हुआ है। इस "भाव प्रकाशिका" टीकामें श्रीपूज्यपाद

त्रिदण्डीस्वामीजी नारदपंचरात्र [१] वृद्धहारीतस्मृति [२] भगवद्-गीता [३] श्रीमद्भागवत [४] यजुर्वेद [५] लक्ष्मीसूक्त [६] यतिराज स्तोत्र [७] रामानुज वैभव स्तोत्र [८] चतुः श्लोकीभाष्य [९] मुक्तिकोपनिषद् [१०] कात्यायनसूत्र [११] बौधायनसूत्र [१२] मीमांसाशास्त्र [१३] गारुडोपनिषद् [१४] आद्यपुराण[१५] श्वेताश्वतरोपनिषद् [१६] निरुक्त [१७] अथर्ववेद [१८] अमर-कोष [१९] पद्मपुराण [२०] पराशरस्मृति [२१] ब्रह्मसूक्त [२२] ऋग्वेद [२३] श्रीस्तव [२४] मुमुक्षुपडी [२५] वार्त्तामाला [२६] व्याकरण सूत्र [२७] श्रीसूक्त [२८] सौभाग्यलक्ष्म्युपानिषद् [२९] मुकुंदमाला [३०] वाल्मीकिरामायण [३१] श्रीगुणरत्नकोश]३२] अष्टोत्तर सहस्रनाम [३३] मंकणसंहिता [३४] छांदोग्योपनिषद् [३५] वेदार्थसंग्रह [३६] पाण्डवगीता [३७] श्रीसात्त्वतसंहिता [३८] कठोपनिषद् [३९] पुरुषसूक्त [४०] तैत्तिरीयोपनिषद् [४१] वेदांतशास्त्र [४२] पराशरीयधर्मशास्त्र उत्तरखण्ड [४३] सीतोप-निषद् [४४] विष्णुपुराण [४५] श्रीवचनभूषण [४६] प्रपन्नामृत [४७] स्तोत्ररत्नावलि [४८] गुरुपरंपरा [४९] इन ग्रन्थों के प्रमाण क्रमशः दिये हैं। वास्तवमें यह टीका वरदवल्लभा स्तोत्रके भावको प्रकाश करनेवाली ही है। इससे इसका "भाव प्रकाशिका" नाम सार्थक है ॥

अब "भावप्रकाशिका" कारका गुणोंसे मुग्ध मैं विं सं १९९४ मेंसिनहा महानारायण यज्ञ में श्री पूज्यपादमें विद्वानोंसे समर्पित कतिपय अभिनंदनपत्रको यहांपर सज्जनोंके आनंदके लिये लिखताहूं।

श्रीमतां १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य्य वेदांत प्रवर्तकाचार्य्य श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य सत् संप्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवदनन्त पादीयानां।

श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य त्रिदण्डि स्वामि पादानां

शुभाभिनन्दनम्।

श्रीशंकरः सकल शास्त्र विचार दक्षो-
वेदांत वेद्य पुरुषेऽर्पित चित्त वृत्तिः।
वेदोक्त मार्ग निरतश्च महान् विपश्चित्-
संशोभतेत्र यति योगि बरास्त्रिदण्डी ॥ १ ॥
पद्मालया लसति यस्य पदारविन्दे"-
सिद्धिः समुल्लसति यस्य करारविन्दे।
वाग्देवता वसति यस्य मुखारविन्दे"-
सोयं विभाति यतिराड्सिनहासुग्रामे ॥ २ ॥
धन्योसिदेव यतिराज महानुभाव-
जिज्ञासुपूज्य चरणोसि समस्त लोके।
लोकोपकार करणे च सदार्द्र चेता-

यत्सेवया भवति सर्व सुखानुभूतिः ॥ ३ ॥
सौभाग्य मद्यविपुलं मम कारुणिक-
संदर्शनेन भवतो महनीय भासः ।
श्रीमद् दयालव वशेनवयागएषः -
सम्पद्यते च यशसा रमया समेति ॥ ४ ॥
न्यग्रोध पादपतले सुपवित्र देशे,
गङ्गातटेऽत्र सिनहा नगरे सुरम्ये ।
योगेश पण्डित सभा स्वभिनंदतित्वाम्,
विज्ञस्त्रिवेदि सहितश्च केदार नाथः ॥ ५ ॥

सिनहा, ता० ११.१०.३७.) पं० केदारनाथ त्रिपाठी

सिनहा महानारायण यज्ञोपलक्षे

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य वेदांत प्रवर्तकाचार्य श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य सत्संप्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवदनंतपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य श्रीत्रिदण्डि स्वामी महोदयानां सेवायां सादर समर्पितम् ॥

अभिनन्दन-पत्रम् ॥

यस्योर्ध्वपुण्ड्रं तिलकं ललाटे, विराजते दक्ष करे त्रिदण्डम् ।

कमण्डलुर्वाम करेऽपि राजते, सशंख चक्रं मुनिमात्मवन्तम् ॥१॥
रामानुजाचार्य सम प्रभावं, लोकानुभावं शठकोप भावम् ।
श्रीभन्तमेकं शरणं शरण्यं; साष्टाङ्ग पातं प्रणतोऽहमस्मि ॥ २ ॥
यत्पाद पद्म प्रहतापि पद्मा, यस्य त्रिदण्डेन च दण्डितापि ।
आज्ञां ग्रहीतुं शिरसा समुत्का, बद्धाञ्जलि स्तिष्ठति पार्श्वभागे ॥३॥
संन्यास दीक्षा समये यथावत्, वेदादि विद्या हवने कृतेऽपि ।
वेदांत तत्त्वं प्रकटी करोति, सरस्वती यस्य मुखारविन्दे ॥ ४ ॥
यो भौतिकाध्यात्मिक दैविकानि, दुःखानि चान्यान्यपि यानि यानि ।
स्वस्यांघ्रि धूलिं स्पृशतां शिरोभिः, दण्डैरपास्य श्रिय मातनोति ॥५॥
वेदोक्त कर्मण्यखिले विनष्टे, वेदांत तत्त्वे निहिते गुहायाम् ।
यस्तत्प्रचाराय सदा पृथिव्यां, दण्डं गृहीत्वा भ्रमतेऽखिलायाम् ॥६॥
तस्याह मर्चाविधि मुत्सुकोऽपि, निरीह चेष्टस्य कथं करोमि ।
श्लोकै रितीत्थं प्रविचार्यतस्मात्, स्तोतुं प्रवृत्त स्तमपूर्वयोगम् ॥७॥
श्रीमन्महाराज ! यतीन्द्रवर्य, योगीन्द्र ! योगस्य तवातुलस्य ।
गुणानुवादं च विधातु मुत्काः, भवंति नाथा नहि लोकनाथाः ॥८॥
तपः प्रभावं तव योगिराज, विभु र्न कश्चित्प्रभुरस्ति वक्तुम् ।
तदा कथं ज्ञान लवो गृहस्थः, संसारसारः किल पारयामः ॥९ ॥
गङ्गौघ भग्नावयवापियेयम्, गङ्गोदक प्लावित धान्य पुंजा ।
तपः प्रभावेणा तवाद्भुतेन, वसुन्धरा द्यापि वसुन्धरास्ति ॥ १० ॥
कृतकर निटलोयं मिश्रशर्म्मा प्रजन्मा, नमति कपिलदेवःपादपद्मःसहर्षः ।
जपति सततमेकं नामधेयं त्वदीयं, स्मरति तवचरित्रं सर्वदादत्ताचित्तः ।११

आश्विनशुक्लायां नवम्यां गुरौ । | निवेदकः
कपिलदेव मिश्रः
प्रधानाध्यापकः
ब्राह्मण ग्रामस्थ श्रीरामानुज
संस्कृत विद्यालयः, गुण्डी, शाहाबाद

सौशील्योदार्यसिंधुः प्रथितशुचियशःसर्वलोकैकबंधुः
यः पांडित्योरुमेरुः कविविपणिपणीरत्नराशिस्त्वमेयः ।
मीमांसाशास्त्रयुग्मश्रमविमलमनाःसार्वभौमस्त्रिलोक्यां
श्रीविष्वक्सेनसूरेःपदकमलयुगं श्रेयसेसंश्रयामि ॥ १॥
श्रीमच्छ्रीशांघ्रिपद्मप्रचुरधनमवाप्याप्तसर्वात्मकामः
श्रीसीतारामपादांबुजधनधनिको लक्ष्मणोऽयं द्वितीयः।
ब्रह्मण्ये राघवोयःशमदमनिलयेरांतिदेवोऽस्य दासः
श्रीविष्वक्सेनसूरेः पदकमलयुगं श्रेयसे संश्रयामि ॥२॥
काषायं यज्ञसूत्रं शुचिवपुषि तथाचोर्ध्वपुंड्रं च भाले,
यस्यास्ते दक्षहस्ते कलिकुमतिगिरींद्रेंद्रवज्रंत्रिदंडम् ।
संसाराग्निप्रशांत्यै भृतजलममलं दारुपात्रं पवित्रं,
श्रीविष्वक्सेनसूरेः पदकमलयुगं श्रेयसेसंश्रयामि॥३॥

आश्विनपूर्णिमायाम्] ले॰ कविरत्नभक्तिसारशास्त्री,
सं॰ १९९४ वि॰ } पचरुखिया, शाहाबाद ।

॥ श्रीः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अन्वयांकोपेतम् ॥

अथ वरदवल्लभा स्तोत्रम् ॥



४ ३ २ ५
मूल० — कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतिः
६ ७ १० ८ ९ १३
शय्यासनं वाहनं वेदात्मा विहगेश्वरो जव-
१२ ११ १५
निका माया जगन्मोहिनी ॥ ब्रह्मेशादिसुर
१४ १६ १७ १८ १९ २०
व्रजस्सदयितस्त्वद्दासदासीगणः श्रीरित्येव च
२२ २१ १ २६ २५ २४ २३
नाम ते भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम् ॥१॥

टीका०= मानत्वं भगवन्मतस्य महतः पुंसस्तथा निर्णयः तिस्रास्सिद्धय आत्मसंविदखिलाधीशान-तत्त्वाश्रयाः । गीतार्थस्य च संग्रहः स्तुतियुगं श्री श्रीशयोरित्यमून् यद्ग्रन्थाननुसंदधे यतिपति स्तं यामुनेयं नुमः ॥ १ ॥

आगमप्रामाण्यनिर्माता महामना श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी –

मत्प्राप्तिं प्रतिजंतूनां ससारे पततामधः ।
लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमार्षिभिः ।
ममापि च मतं ह्येतन्नान्यथा लक्षणं भवेत् ॥
नारदपांचरा० ॥

संसारमें अधः पतित जीवोंको हमारी प्राप्तिके लिये महर्षिलोग लक्ष्मी जी को पुरुषकार कहते है। हमारा भी यही मत है । इस का और लक्षण नहीं हो सकता है । इस कथनानुसार भगवत्प्राप्ति के लिये पुरुषकारभूता जगज्जननी महालक्ष्मी जी की स्तुति "वरद वल्लभा स्तोत्र" से कहते हैं, तहां प्रथम श्लोकमें यह कहते हैं कि विलक्षणवैभवसे युक्त आपको हम कैसे कथन कर सकते हैं ।

(हे भगवति) हे परिपूर्ण षड्गुणवाली मा, भगवती का विषयमें वृद्धहारित स्मृतिमें लिखा है कि–

ऐश्वर्यं च तथा वीर्यं तेजः शक्तिरनुत्तमा ।
वृद्धहा० अ०६ श्लो० १६४ ।
ज्ञानं बलं यदेतेषां षण्णां भग इतीरितः ।
एभिर्गुणैः पूर्णो यो स एव भगवान्हरिः ॥१६५॥
नित्या च या भगवती प्रोच्यते मुनिसत्तमैः ।
ऐश्वर्यरूपा सा देवी सुभगाकमलालया ॥१६६॥
ईश्वरी सर्वजगतां विष्णुपत्नी सनातनी ।
तस्याः पतित्वाद्धीशस्य भगवानिति चोच्यते। १६७

ऐश्वर्य १ वीर्य २ तेज ३ श्रेष्ठशक्ति ४ ज्ञान ५ और बल ६ इन छवोंको भग कहते हैं । इन छवगुणोंसे पूर्ण भगवान् नारायण ही हैं । और सव जीवों की स्वामिनी आद्या सुभगा ऐश्वर्यरूपा पद्मालया विष्णुपत्नी वह महालक्ष्मी देवी श्रेष्ठमुनियों से सर्वदा भगवती कहीजाती हैं । तथा निश्चय करिके महालक्ष्मी जी के पति होनेसे नारायण भी भगवान् शब्दसे कहेजाते हैं । इससे ज्ञात होता है की परिपूर्ण ऐश्वर्यादि गुणवाली महालक्ष्मी जी ही हैं । तो हे भगवति (पुरुषोत्तमः) क्षर और अक्षरसे अतीत लोकवेदप्रसिद्ध परमपुरुष पुरुषोत्तमका विषयमें श्रीमद्भगवद्गीतामें लिखा है कि —

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
भगवद्गी० अ० १५ श्लो० १६ ।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

लोकमें दो पुरुष हैं, एक क्षर दूसरा अक्षर बद्धसंपूर्ण जीवको क्षर कहते हैं, और मुक्त कूटस्थजीवको अक्षर कहते हैं । १६। और इन दोनोंसे अन्य उत्तम पुरुष हैं जिनको परमात्मा कहते हैं। जो अव्यय परमेश्वर तीनलोकमें प्रवेशकर धारण पोषण करता है ।१७ जिससे मैं क्षरसे अतीत हूं और अक्षरसे भी उत्तम हूं अतः लोक तथा वेदमें पुरुषोत्तम मैं प्रख्यात हूं ॥ १८ ॥ तो पर पुरुष नारायण (ते) आपके (कान्तः) प्रियपति हैं। क्योंकि यह श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि– वव्रेवरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमामुकुंदं निरपेक्षमीप्सितम् । श्रीमद्भा० स्क० ८ अ० ८ श्लो० २३ । महालक्ष्मी जी सवगुणोंसे अपेक्षित निरपेक्ष ईप्सित नारायणको पतिरूपसे स्वीकार कियें ।२३॥ और यजुर्वेदमें लिखा है कि—

"श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ" यजु० अ०३१ म०२२।

श्री और लक्ष्मी आपकी पत्नी हैं ॥ २२ ॥ तथा लक्ष्मी

सूक्तमें लिखा है कि—

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
विष्णुप्रियां सखीं देवीं नमाम्यच्युत वल्लभाम् ॥

लक्ष्मी सू॰ मं॰ ६ ।

महालक्ष्मीं च विद्महे विष्णुपत्नीं च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥ ७ ॥

इन मंत्रोंसे स्पष्ट साबित होता है की महालक्ष्मी जीके कांत पुरुषोत्तम हैं। और (फणिपतिः) फणिराज शेषजी, फणिपतिका विषय में लिखा है कि —

आदौ जगदाधारः शेषस्तदनुसुमित्रानंदनवेषः ।
तदुपरिधृतहलमुसलविशेषस्तदनंतरमभवद्गुरुरेषः ॥

यतिराजस्तो॰ श्लो॰ २ ।

आदिमें जगदाधारशेष तिसके बाद श्रीलक्ष्मण तत्पश्चात् बलदेव तिसके बाद जगद्गुरु रामानुजाचार्य हुवे हैं ॥ २ ॥ और श्रीब्रह्म-संहितामें लिखा है कि—

प्रथमोऽनंतरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा ।
तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजो मुनिः ॥

रामानुजवैभवस्तो॰ श्लो॰ । २१ ।

कृतयुगमें पहला अनंतरूप और त्रेतामें दूसरा लक्ष्मणरूप तथा द्वापरमें तीसरा बलरामरूप और कलियुगमें चौथा रामानुजमुनिरूप शेषावतार हुआ है । २१ । और भी लिखा है कि—

कल्पांते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोज्ज्वलः ।
संकर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम् ॥
स बिभ्रच्छेखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ।
आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः ॥
तस्य वीर्यं प्रभावं च स्वरूपं रूपमेव च ।
नहि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि ॥

कल्पांतमें जिस फणिपतिका मुखोंसे विषानलशिखोज्ज्वलसंकर्षणनामवाला रुद्र निकलकर तीनलोकको खाता है वह सबदेवोंसे पूजितशेषराज संपूर्णभूमण्डलको मस्तकपर मालाके समान धारणकरते हुये पाताललोकके मूलमें रहते हैं । और भगवद्गीतामें लिखा है कि-

अनन्तश्चास्मि नागानाम् । भगवद्गी० अ० १० श्लो० २९ ॥

अनेक शिरवाले नागोंमें अनन्त नामवाला शेषजी मैं हूं ॥२९॥ तथा अनंतजी का विषयमें लिखा है कि—

गंधर्वाप्सरसस्सिद्धास्साकिन्नरमहोरगाः ।
नांतं गुणानां गच्छंति तेनानंतोऽयमुच्यते ॥

गन्धर्व अप्सरा सिद्ध किन्नर और महोरग जिस के गुणों को अन्त न पावें उस को अनन्त कहते हैं ।

तेनेयं नागवर्य्येण शिरसा विधृता मही ।
विभर्ति मालां लोकानां सदेवासुरमानुषाम् ॥

वह नागराज शिरसे इस महीको धारण किये हैं सब लोकके देव असुर तथा मनुष्यके सहित मालाको वह धारण करते हैं । वह फणिराज शेषजी (शय्या) आपकी शय्या हैं । और [आसनम्] आसन हैं । और [वेदात्मा] गमन समयमें जिनके पक्षोंसे वेदकी ध्वनि होती है ऐसे (विहगेश्वरः) पक्षियोंके ईश्वर गरुडजी, वेदका विषय में लिखा है कि—

निश्वासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः ।
तिलेषुतैलवद्वेदे वेदांतः सुप्रतिष्ठितः ॥

मुक्तिको० मं० ९ ।

रामवेदाः कतिविधास्तेषां शाखाश्च राघव ।
तासूपनिषदः काः स्युः कृपया वद तत्त्वत ॥१०॥
ऋग्वेदादिविभागेन वेदाश्चत्वार ईरिताः ।
तेषां शाखा ह्यनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा ॥११॥
ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशति संख्यकाः ।

नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज ॥ १२ ॥
सहस्रसंख्या संजाताः शाखाः साम्नः परन्तप ।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद्भेदतो हरे ॥ १३॥
एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता ।
तासामेकामृचं येन पठ्यते भक्तितो मयि ॥ १४॥
स मत्सायुज्यपदवीं प्राप्नोति मुनिदुर्लभाम् ॥१५॥

श्रीविष्णुके श्वासभूत सब वेद विस्तारसहित उत्पन्न हुए तिलमें तेलके समान वेदमें वेदांत प्रतिष्ठित है। हे श्रीरामजी वेद कीतने हैं और वेदोंकी शाखायें कीतनी हैं तथा उन शाखाओंमें कीतने उपनिषद है यह कृपा करिके मुझसे कहिये ॥ १० ॥ ऋग्वेदादि बिभगसे चारवेद कहे गये हैं, उन बेदोके अनेक शाखाथे है और जीतने शाखाये हैं उतनीहीं उपनिषद् है ॥ ११ ॥ ऋग्वेदकी एकयीस शाखाये है और हे मारुते यजुर्वेदके एक सौ नव शाखाये हैं ॥ १२ ॥ तथा सामवेदके हजार शाखाये है और अथर्व वेदके पचास शाखाये हैं ॥ १३ ॥ प्रत्येक शाखाओ में एक एक उपनिषद् होते हैं, उनमें से एक ऋचाको भी जो मेरे विषयमे भक्तिसे पढता है ॥ १४ ॥वह मुनियोंके दुर्लभ मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त करता है ॥ १५ ॥और भी लिखा है कि– **'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' कात्यायन सू०** मंत्र और ब्राह्मण इन दोनोंका नाम वेद है। **"मन्त्र**

ब्राह्मणमित्याहुः" बोधायन सू० । मंत्र और ब्राह्मणभाग को बेद कहे हैं " तच्चोदकेषु मंत्राख्या " मीमां० अ० २ पा० १ सू० ३२. " शेषे ब्राह्मण शब्दः" मी० अ० २ पा० १ सू० ३३ । प्रेरणा लक्षण श्रुति ही का नाम मंत्र है । ३२ । मंत्रसे शेष वेद ब्राह्मणशब्द से कहा जाता हैं । ३३ । " तेषामृग्यत्रार्थवशेन पाद व्यवस्था" मी० अ० २ पा० १ सू० ३५ । "गीतिषु सामाख्या" सू० ३६ । " शेषे यजुः शब्दः" । ३७ । जहांपर अर्थवशसे पाद की व्यवस्था हो उसे ऋग्वेद कहते है । ३५ । गीतिमें सामवेद ऐसी आख्या होती हैं । ३६ । कहेहुवेसे शेषमे यजुर्वेद ऐसा शब्द कहा जाता है । ३७ । वेदात्मा खगनायक है क्यो कि लिखा है की—

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुः । श्रुति० ।

हे गरुड ! तुम गरुत्मान् सुपर्णहो तेरा त्रिवृत शिर है और गायत्र नेत्र है।

तस्य गायत्री जगती च पक्षावभवताम् उष्णिक् च त्रिष्टुप् च पृष्ठ्यौ अनुष्टुप् च पंक्तिश्च धुर्यौ बृहत्येवोक्तिरभवत् स एतं छंदोरथमास्थाय एत-मध्वानमनुसमचरत् ॥ श्रु० ॥

गरुडके गायत्री छन्द और जगती छन्द ये दोनों पांख हुवें

तथा उष्णिक् छन्द और त्रिष्टुप् छन्द ये दोनो पृष्ठ्य हुवे और अनुष्टुप् छन्द तथा पंक्ति छन्द ये दोनो धुर्य हुवे और निश्चय करिके वृहतीछन्द उक्ति हुई वह इस छन्दोमयरथपर रखकर इस मार्ग से अछिप्रकारके विचरा है । तथा गारुडोपनिषद् में इस प्रकारके बहुत वर्णन है । और भी लिखा है कि—

वैनतेयश्च पक्षिणाम् । भगवद्गी० अ०१० श्लो०३० ।

पक्षिओंमें बिनता सुत गरुड मैं हूं ॥ ३० ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ! यजु० अ० १७ मं० ७२ ।

हे गरुड तुम सुंदर पंखवाला गरुत्मान् हो इससे पृथ्वीके पीठ पर वैठो । ७२ । तो वेदात्मा गरुड जी आपके [वाहनम्] वाहन है। इस चतुः श्लोकी का प्रथम श्लोकमे जो "आसनम् " पद है सो 'काकाक्षिन्याय" से फणिपति और बिहगेश्वर इन दोनोके साथ योजना किया जाता है इससे ऐसा अर्थ होता है की फणिपति आप के आसन हैं। और खगनायक आप के आसन है । इसके आद्य पुराण में लिखा है कि—

भोगप्रिया भोगवती भोगीन्द्रशयनासना ।

इस श्लोकमे स्पष्ट महालक्ष्मी जी को "भोगीन्द्रशयनासना" इस पदसे फणिपति आसनविशिष्ट वर्णन है। और=

अजिताकर्षणा नीतिर्गरुडा गरुडासना ।

इस श्लोकमें स्पष्ट महालक्ष्मी को "गरुडासना" इस पदसे विहगेश्वर आसन विशिष्ट वर्णन है । इससे "आसनम्" यह पद यहांपर उभयान्वयी सिद्ध हो गया । और [जगन्मोहिनी] विचित्र भोग्य भोगोपकरणादिरूप नानाप्रकारके परिणामको प्राप्त होनेवाली अतएव संसारको मोहकरानेवाली (माया) प्रकृति, मायाका विषयमें लिखा है कि—

'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' श्वेताश्व० अ०४ मं० १०

मायाको तो प्रकृति जाने ॥ १० ॥ और –

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

भगवद्गी० अ० ७ श्लो० ४ ।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ प्रकारके प्रकृतिके भेद हैं । ४ । इसको अपरा प्रकृति कहते हैं इससे अन्य मेरी पराप्रकृति जीवभूत तुम जानो जिसके द्वारा इस समस्त संसारको मैं धारण करता हूं ॥ ५ ॥ नः प्रकृति आगकी

[जवनिका] परदा है । अर्थात् जैसे पहले परदापर दृष्टिके रुकजाने से भीतरका वस्तु देखने में नहीं आता है तैसेही विचित्रस्रक् चंदन वनितादिरूप परिणामको प्राप्त होनेवाली मायापर दृष्टिके रुकजानेसे आपके स्वरूप सर्वत्र रहनेपर भी देखनेमे नही आता है । और (सदार्थितः) अपनी अपनी क्रियोंकरके सहित (ब्रह्मेशादिसुरव्रजः) ब्रह्मा रुद्र आदिक देवोके समुदाय, " ब्रह्मेशादि " यहांपर जो आदि शब्द है तिससे- **अग्निर्देवता, वातो देवता, सूर्यो देवता, चंद्रमादेवता, वसवो देवता, रुद्रो देवतादित्या देवता, मरुतो देवता, विश्वेदेवा देवता, बृहस्पति र्देवतेंद्रो देवता वरुणो देवता ॥ यजु० अ०१४ मं०२०** अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्र, वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत, विश्वेदेव, बृहस्पति, इंद्र, वरुण ये देवता ॥ २० ॥ और— ' **तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवी स्थानो वायुर्वेंद्रो वांतरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानस्तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवंति ॥ निरु० दैवतकां० अ० ७ खं० ५ ॥** यह तीन देवता है अग्नि देवता पृथिवी स्थानमे, वायुदेवता और इंद्रदेवता अंतरिक्षस्थानमें और सूर्य देवता द्युस्थानमें है । इन देवताओके महा भाग्य होनेसे एकएकके

बहुतसे नाम होते हैं ॥ ५ ॥ तथा—

ऋचः सामानिच्छंदांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ॥
अथर्व० कां० ११ प्रपा० अनु० १ मं० २४ ॥

सबके अंतमें शेषरहनेवाले श्रीमन्नारायण भगवान् से ऋक् साम छंद और यजुर्वेदके साथ पुराण तथा दिवलोक मे रहनेवाले दिविश्रित समस्त देवगण उत्पन्न हुए ।' २४ ॥ इन मंत्रों मे वर्णित देवताओं का ग्रहण होता है। तो ब्रह्मा शिव प्रभृति देव समुदाय (त्वद्दासदासीगणः) आपके दास दासी गण हैं अर्थात् ब्रह्मादिक देवगण आपके दास हैं-और सरस्वत्यादिक देवीगण आपकी दासी हैं । यहां पर दास और दासी शब्द भृत्य तथा भृत्या वाचक हैं, क्यों कि लिखा है कि—

भृत्ये दासेय दासेरदास गोप्यकचेटकाः ।
नियोज्य किंकरप्रैष्य भुजिष्य परिचारकाः ॥
अमरको० कां० २ वर्ग० १० श्लो० १७ ॥

भृत्यमे दासेय दासेरदास गोप्यक चेटक नियोज्य किंकर प्रैष्य भुजिष्य परिचारक इन शब्दोंका प्रयोग किया जाता है ॥ १७ ॥ और भी लिखा है कि—

दासो भृत्ये च शूद्रे च ज्ञानेऽर्थिनि च धीवरे। को० ।

दास शब्दका प्रयोग भृत्य शूद्र ज्ञान अर्थ और धीवरमे होता है । तो इस पूर्वोक्त स्थलमे प्रथमोपस्थित होनेसे दास शब्दका प्रयोग भृत्यमे हो सिद्ध होता है। ब्रह्मादिक देवगण "जाया पत्योर्न विभाग:" इस न्यायसे —

दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत् ।
पद्मपु. उत्तरखं. ६ अ. २२६ श्लो. १२ ॥

नारायणके ब्रह्मादिक समस्त संसार दासभूत है ॥ १२॥ और भी लिखा है कि—

दासभूता: स्वत: सर्वे ह्यात्मन: परमात्मन: ।
नन्यथा लक्षणं तेषां बंधे मोक्षे च विद्यते ॥ पराश.

सब जीवात्मा निश्चय करके परमात्माके स्वत: सिद्ध दास हैं, उन जीवात्मओंके वन्धनमें या मोक्षमे अन्य लक्षण नही है ।

नैसर्गिकं हि सर्वेषां दास्यमेव हरे: सदा ।
स्वाम्यं परस्वरूपस्य दास्यं जीवस्य सर्वदा ॥
वृद्धहारी० अ० १ श्लो० १७ ॥

स्वाभाविक सब जीवोंके प्रति नारायणकी दासता सिद्ध है, इस से नारायणमें स्वामित्व और जीवमें दासत्व सदा अनुसंधान करना चाहिये ॥ १७ ॥

ब्रह्मदाशा ब्रह्मदासा ब्रह्मैवेमे कितवाः । ब्रह्मसू०

ये जीव सब ब्रह्मका दाश है तथा सेवक हैं और कितव है । और यजुर्वेदमे भी लिखा है कि—

'यस्यायं विश्वआर्यो दासः' । यजु. अ. ३३ मं. ८२ ।

जिस नारायणके यह विश्व और आर्यजन दास है ॥ ८२ ॥ इन प्रमाणोकरिके सिद्ध नारायणका दास महालक्ष्मी जी का भी दास है ही है । और महालक्ष्मी जी के विषयमे ऋग्वेदमे लिखा है कि—

अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमाश्विनोभा । ऋग्वे. अष्ट. ८ मण्ड. १० अ. १० सू. १२५ मं. १ । अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् । अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥ अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञीयानाम् । तां मा देवाव्यदधुः पुरुत्राभूरिस्थात्रां भूयोविशयंतीम् । ३ । अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ४ ॥ अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे

शरवे हंतवाऊं । अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥ ६ ॥

मैं मित्रदेव तथा वरुणदेव और इंद्रदेव तथा अग्निदेव और दोनों अश्विनीकुमारदेवोंको धारण तथा पोषण करती हूं ॥ १ ॥ मैं सब ओरसे मारनेवाला सोमदेव और त्वष्टादेव तथा पूषादेव और भगदेव को धारण तथा पोषण करती हूं और मैं जोयजमान सुन्दर हविष्य तथा सोमइंद्रादिदेवोंके लिये देता है उसके लिये धन देती हूं। २। मैं सब संसारके ईश्वरी तथा मिलनेवाली ज्ञानवाली पहली यजनीय देवताओं में अनेकतरफसे स्थितहोनेवाली अनेकतरफसे प्रवेशकराती हुई मुझको देवलोग अनेक जगह विधान करते हैं। ३। मै ही आप यह कहती हूं जो कि देवों से तथा मनुष्योंसे सेवित है जिसको मैं चाहती हूं उसको उत्तम बढिया बनाती हूं और उसको ब्रह्मा तथा ऋषि और मेधावी बनाती हूं । ४। मै रुद्रके धनुषको विस्तारयुक्त करती हूं ब्रह्मद्वेषियोंके और हिंसकोंके मारनेके लिये तथा मैं ही उनके लिये मदयुक्त करती हूं तथा मैं दिवलोकमे और पृथिवीमें प्रवेशकरिके व्याप्त हो रही हूं । ६ । इन प्रमाणोंसे सिद्ध हो गया कि सब संसार महालक्ष्मीजी का दास दासीगण है । और सरस्वती देवी भी श्रीदेवी की दासी है क्यो कि लिखा है कि—

लोके वनस्पति बृहस्पति तारतम्यं
यस्याः कटाक्षपरिणाम मुदाहरन्ति ।

सा भारती भगवती तु यदीय दासी
तां देवदेव महिषीं श्रियमाश्रयामः ॥
श्रीस्तव० श्लो० ९ ।

जिस सरस्वती कि कृपासे लोकमें वनस्पति के समान जढ वृहस्पतिके तारतम्यको प्राप्त करता है ऐसा ऋषिलोग कहते है वह सरस्वती भगवती जिसकी दासी है उस देवदेव महिषी श्रीदेवीको हम सब आश्रयण करते हैं। १। और (श्रीः) श्री (इति) ऐसा (एव) निश्चयकरिके [च] तो (ते) आपका [नाम) नाम है । क्यो कि लिखा है कि—

' महालक्ष्म्याः श्री नाम ' सुमुक्षुप० ।

महालक्ष्मी जी का श्री नाम है । श्री का विषयमे लिखा है कि—

श्रयंतीं श्रीयमाणां च श्रृणवंतीं श्रृणतीमपि ।
श्रृणाति निखिलं दोषं श्रृणोति च गुणैर्जगत् ॥
श्रीयते चाखिलैर्नित्यं श्रयते च परं पदम् ।

इस प्रकारकी निरुक्ति है तो यह श्रीशब्द अनेकप्रकारसे सिद्ध होता है । इस का विषयमे वार्त्तामालामे लिखा है कि—

श्रीरिति नाम श्रिञ् सेवायामिति धातोः श्रीयते श्रयत इति व्युत्पत्ति द्वयसिद्धत्वात्सेवाकर्तृकर्मणी

वदति ॥ वार्त्तामा० वार्त्ता० १२१ ।

श्री यह महालक्ष्मीजीका नाम है, यह श्री शब्द भ्वादिमें पठित 'श्रिञ् सेवायां' इस धातुसे " श्रीयते " और " श्रयते " इस प्रकारकी दो व्युत्पत्तिसे सिद्ध होनेसे सेवाके कर्त्ता और कर्म को श्री शब्द कहता है ॥ १२१ ॥ अर्थात् " श्रिञ् " सेवायाम् इस धातुसे श्रीयते अथवा श्रयते इस प्रकारकी व्युत्पति करनेपर ॥ **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ।** इस वार्तिकसे निष्पन्न श्रीशब्द है । इनमे " श्रीयते-- इति श्रीः " इस कर्मणि व्युत्पत्तिसे समस्त चेतनो करके आश्रिता अथवा सेविता लक्ष्मी जी का बोध होता है । और " श्रयते इति श्रीः " इस कर्तरि व्युत्पत्तिसे भगवान्को आश्रयण करनेवाली लक्ष्मी जीका बोध होता है और भी लिखा है कि—

'श्रृणोतीति श्रावयतीति च श्रीरिति व्युत्पत्तिभ्यामनुष्ठानमुच्यते श्रृणोतीति श्रवणमुच्यते । वार्तामा० वा० १२१ ।

" श्रृणोति " इस प्रकार की और " श्रावयति " इस प्रकारकी व्युत्पत्ति करनेसे भ्वादिमें पठित " श्रु श्रवणे " इस धातुसे श्री यह प्रयोग 'उणादयो बहुलम्' व्या० अ० ३ पा० ३ सू० १ । इस सूत्रसे सिद्ध होता है । ''श्रृणोति'' और श्रावयति इन दो व्युत्पत्ति-

योंसे अनुष्ठान कहाजाता है । " शृणोति " ऐसी व्युत्पत्तिसे श्रवण कहाजाता है ॥ १२१ ॥ इस प्रकारसे और अर्थ भी जानना चाहिये । और श्रीसूक्तमे लिखा है कि —

ईश्वरींसर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।

श्रीसू० मं ९ ।

सब जीवों की स्वामिनी उस श्रीदेवीजी को यहांपर मैं बुलाता हूं ।२ तो आपका श्री ऐसा नाम है तब फिर [वयम्] हमसब (त्वाम्) तुमको [कथम्] कैसे [ब्रूमः] कथन कर सकते हैं, क्यों कि लिखा है कि—

ब्रह्माद्याः सकला देवा मुनयश्च तपोधनाः ।
त्वां स्तोतुमपि नेशानास्त्वत्प्रसादलवं विना ॥

ऐ जगज्जननि! ब्रह्मा आदिक समस्त देवता और तपोधन मुनिसब आपकी प्रसन्नताका लेशके विना आपकी स्तुतिकरनेके लिये भी नहीं समर्थ हो सकते है । इससे हम आपकी स्तुति करनेके लिये कैसे समर्थ हो सकते हैं ? ॥ १ ॥

३ ४ ८ १२ १३ ११
मू०— यस्यास्ते महिमानमात्मन इव त्वद्व-
१० ९ १६ १७ १५ १४ ७
ल्लभोऽपि प्रभुर्नालं मातुमियत्तया निरवधिं

६ ५ १८ १९ २० २१
नित्यानुकूलं स्वतः ॥ तां त्वां दास इति
२२ २३ २४ ३१ ३० २९ १
प्रपन्न इति च स्तोष्याम्यहं निर्भयो लोकैके-
२ २५ २७ २६ २८
श्वरि लोकनाथदयिते दांते दयां ते विदन् ॥२॥

टी०— [हे लोकैकेश्वरि] ऐ लोकके प्रधानेश्वरि ! क्यों कि वृद्ध-हारीत स्मृतिमें लिखा है कि—

श्रीरस्येशाना जगतो विष्णुपत्नीति वै श्रुतिः ।

वृद्धहा० अ० ६ श्लो० ६७ ॥

श्रीदेवी जी इस संसारके ईश्वरी हैं क्यो कि निश्चय करिके विष्णुपत्नी उनको श्रुति कही है ॥ ६७ ॥ तो हे लोकैकेश्वरि (हे लोकनाथदयिते) हे जगन्नाथ वल्लभे ! लोकनाथदयिताका विषयमे लिखा है कि—

सकलभुवनमाता संततं श्रीः श्रियै नः ।

सौभाग्य लक्ष्म्यु० मं० १ ॥

संपूर्ण भुवनकी माता श्रीदेवी जी सर्वदा हम सबोंकी संपत्तिके

लिये हों ॥ १ ॥ और—

सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगंधमाल्यशोभे । भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीदमह्यम् ॥ लक्ष्मीसू० मं० १ ॥

इस मंत्रमे स्पष्ट हरिवल्लभे पद है इससे ज्ञात होता है कि नारायणकी वल्लभा है । और भी लिखा है कि—

त्वं माता सर्वलोकानां सर्वलोकेश्वरप्रिये । वृद्धहा० अ० ४ श्लो० १३ ।

हे सर्वलोकेश्वरप्रिये सब लोकके तुम माता हो ॥ १३ ॥ तो हे लोकनाथ दयिते ! (यस्याः) जिस (ते) आपके (स्वतः) स्वयं [नित्यानुकूलम्] नित्य अनुकूल [निरवधिम्] अवधिरहित [महिमानम्] महिमाको, अम्बाजीका विषयमे वेदार्थ संग्रहमें भी लिखा है कि—

अनवधिकमहिमा महिषी । वेदार्थसं० ।

अवधिशून्य महिमावाली महिषी महालक्ष्मी जी हैं । तिस महालक्ष्मी जी की महिमाको [प्रभुः] सर्वविषयकज्ञानशक्त्यादिमान् परमसमर्थ, जिस प्रभुका विषयमे लिखा है कि—

महान्प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्त्तकः ।

श्वेताश्व० अ० ३ मं० १२ ।

यह महान् पुरुष प्रभु निश्चयकरिके सत्त्वका प्रवर्तक हैं ।' १२ ॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्-
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् । श्वे. अ.६मं.७

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च ॥ ८ ॥

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
सकारणं करणाधिपाधिपो न
चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ ९ ॥

स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनि-
र्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः ।

प्रधान क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसार मोक्षस्थितिबन्ध हेतुः ॥ १६ ॥

समस्त मालिकोंके बड़ा मालिक तथा इन्द्रादिदेवोंके देव प्रजापतियोंके रक्षक और ब्रह्मादिदेवोंसे परे सबके स्तुतिकरनेयोग्य भुवनोंके स्वामी उस परमेवको हम सब प्राप्त करें ॥ ७ ॥ उस परदेव का कार्य या करण नहीं है तथा उनके बराबर या अधिक नहीं है अनेक प्रकारके उनकी परा शक्ति सुनीजाती है और ज्ञान बल क्रियाये उनमे स्वाभाविकी हैं ॥ ८ ॥ उस परमेश्वर का रक्षक लोक में कोई नहीं है, न कोई उसका स्वामी है और न तो उसका लिङ्ग है, वह सबका कारण है तथा इंद्रियोंके स्वामियोंका अधिप हैं और परमात्माका उत्पादक अन्य मालिक कोई नहीं है ॥ ९ ॥ वह परमात्मा विश्वका कर्ता तथा विश्वको जाननेवाला आत्मयोनि ज्ञाता कालोंका काल गुणवाला सर्व वेत्ता है और प्रधान तथा जीवात्माका पति गुणेश और संसारके मोक्ष स्थिति बंधनका कारण है ॥ १६ । इन प्रमाणोंसे परम समर्थ होकर (अपि) भी (त्वद्वल्लभः) आप का वल्लभ प्रियपति नारायण, श्रीवल्लभनारायण हैं यह लिखा है कि—

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति ।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासे

त्यालापिनं प्रतिपदं कुरु मां मुकुंद ॥

मुकुन्द० श्लो० १ ।

इस श्लोकमें स्पष्ट श्रीवल्लभ शब्द आया है। तो आपका प्रिय पति नारायण [आत्मनः] अपनी (इव) महिमाके सदृश [इयत्तया] इयत्ता करके अर्थात् महालक्ष्मीजी की इतनी ही महिमा है ऐसे परिच्छेद करके [मातुम्] तौलनेके लिये [न] नहीं [अलम्] समर्थ हो सकते हैं। और इस द्वितीय श्लोकमे जो "अपि" पद है सो तो अनुक्त समुच्चयार्थ भी है इस से ऐसा भी अर्थ होता हैं की आप भी अपनी महिमाको इयत्ता करके तौलनेके लिये नहीं समर्थ हो सकती है। इसिसे श्रीस्तवमे लिखा है कि—

देवि त्वन्महिमावधि र्न हरिणा नापि त्वया ज्ञायते
यद्यप्येवमथापि नैव युवयोः सर्वज्ञता हीयते ।
यन्नास्त्येव तदज्ञतामनुगुणां सर्वज्ञताया विदु-
र्व्योमांभोजमिदन्तया खलु विदन् भ्रांतोऽयमित्युच्यते

श्रीस्तव० श्लो० ८ ॥

हे देवि! तेरी महिमाकी अवधिको नारायण और तुम भी नहीं जानती हो यद्यपि ऐसा है तौभी आप दोनोंकी सर्वज्ञताकी हानी नहीं है क्यो कि जो वस्तु नहीं है उसको नहीं जानना ही सर्वज्ञता-

के अनुगुण है । आकाशका फूलको इदन्तया जाननेवाला निश्चयकरिके यह भ्रांत है ऐसा कहा जाता है ॥ ८ ॥ [ताम्] तिस निरवधिक महिमावाली [त्वाम्] जगज्जननी तुमको [दासः] सेवक मै हूं क्यों कि लिखा है कि—

दास्यं स्वरूपं सर्वेषामात्मनां सततं हरेः ।
वृद्धहा० अ० ६ श्लो० ८१ ॥

सर्वदा सब जीवोंके नारायणके दास्य ही स्वरूप है ॥ ८१ ॥

मोहाद्दास्यं विना विष्णोः किञ्चित्कर्म समाचरेत् ।
न तस्य फलमाप्नोति तामसीं गतिमश्नुते ॥
वृद्धहा० अ० ८ श्लो० ६१ ।

मोहसे विष्णुभगवान् की दासताके बिना जो कुछ कर्म करता है उसका फल नहीं प्राप्त होता है और तामसी गतिको प्राप्त करता है ॥ ६१ ॥ इससे कहे हैं कि दास मै हूं [इति] इसहेतुसे [च] और (प्रपन्नः) प्रपन्न मै हूं, प्रपन्नका विषयमें लिखा है कि—

विहाय चान्यत्परमं दयालुं प्राप्यं समर्थं निरपायमीश्वरम् । उपायमेतेऽध्यवसीय सुस्थिता ज्ञेयाप्रपन्नाः सततं हरिप्रियाः ॥

जो लोग अपने ज्ञानादिक के विश्वासको छोडकर भगवत्प्राप्ति

के लिये परमदयालु प्राप्यअर्थ अपायरहित केवल नारायणको ही उपाय मानते हैं सर्वदा हरिप्रिय उन लोगोको प्रपन्न जानना ॥

प्रपन्नश्चापि दृप्तः स तथा चार्त इति द्विधा ।
शरीरस्थिति पर्यंतमाद्योऽत्रैव यथोचितम् ॥
प्राप्तदुःखादिभुञ्जानः शरीरांते ऽवसीय च ।
महाबोधो ऽतिविश्वासो मोक्षसिद्धिमवास्थितः ॥

और प्रपन्न भी दोप्रकारकेहैं एक दृप्त और दूसरा आर्त्त । उन मे से दृप्तप्रपन्न सांसारिक दुःखोसे नहीं घबराता हुआ शरीरपात पर्यंत प्रारब्ध दुःखोको भोगकर देहांतकालमे परमधामको प्राप्त होताहै

अर्थांत्यो ऽसहमानस्तत् क्षणमेव तु संसृतिम् ।
तथैव भगवत्प्राप्तौ सत्त्वरस्त्वांत उच्यते ॥

और जो प्रपन्न ससार के संबंधको एकक्षण भी नहीं सहता है और भगवत्प्राप्तिमें बडी त्वरा कर रहा है उसको आर्त्तप्रपन्न कहते है । तो प्रपन्न अर्थात् शरणागत भै हूं [इति] इस कारणसे [दांते] दीनावस्थापन्नका विषयमे, अथवा दांतशब्द यहांपर प्रश्रितमात्रपरक है, इससे प्रश्रितजनके विषयमे, क्यो कि लिखा है कि—

धर्मनित्ये महाबुद्धौ ब्रह्मण्ये सत्यवादिनि ।
प्रश्रिते दानशीले च सदैव निवसाम्यहम् ॥

नित्यधर्ममे श्रेष्ठबुद्धिमे ब्रह्मण्यमें सत्यवादिमे प्रश्रितमे और दान शीलमे सर्वदा मै निवास करती हू। तो दांतजनका विषयमे [ते] मातृत्व प्रयुक्त वात्सल्यातिशयवाली आपकी [दयाम्] दयाको [विदन्] जानताहुवा [निर्भयः] भयसे रहित [अहम्] मैं [स्तोष्यामि] स्तुतिकरता हूं । दीनावस्थापन्न महाअपराधी जयन्त काकका विषयमे जानाजाता है की,

विरराद स्तनांतरे । वा. रा. सुं. ५ स. ३८ श्लो. २२

इस श्लोकके अनुसार आपके साथ अत्यन्त अपराध किया परन्तु उस काकके उपर दया करिके आप जो कही हैं वह स्पष्ट लिखा है कि—

प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताथ वायसम् ।
पाहि पाहीति भर्तारमुवाच दयया विभुम् ॥
पद्मपु. उत्तरखं. ६ अ. २४२ श्लो. २०७ ॥

प्राणके संशयप्राप्तभया जयंत काकको देखकर श्रीसीताजी दया से विभु श्रीरामजी से कहीं कि हे स्वामिन् ! आप इस काककी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ २०७ ॥ इस प्रकारकी दयाको जानताहुवा मैं निर्भय स्तुति करता हूं । और घोर राक्षसियोंके विषयमें लिखा है कि रावणकी पराजय और श्रीरामजीके विजयको स्वप्नने देखनेवाली त्रिजटाके वाक्यको सुनकर,

सर्वा एवाब्रुवन्भीताः । वा. रा. सुं. ५ स. २७

श्लो० ७ ॥

सबही राक्षसियां डरकर बोलीं ॥ ७ ॥ इस प्रमाणसे अत्यंतभय भीत राक्षसियोंके प्रति श्रीसीताजी कही हैं कि—

यदितत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः । वा. रा. सुं. ५ स० २७ श्लो० ४८ ॥

यदि हमारे स्वामी के विजय होजायेगा तो तुमलोगोंकी मैं रक्षा करूंगी ॥ ४८ ॥ ऐसा अभय प्रदानकरके फिर रावणका वध होनेपर शुभवृत्तांत सुनानेके लिये आये हुए महावीरजीनें राक्षसियों को चित्रवध करनेकेलिये मुझे सौंप दो ऐसा कहा तब श्रीसीताजी कही हैं कि—

राजसंश्रयवंश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया ॥
वा. रा. युद्ध. ६ स. ११५ श्लो. ३६ ॥
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ।
भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च ॥ ३७ ॥
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परागतिः ॥ ३८ ॥
प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम् ।
दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥ ३९ ॥

आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयंति माम्।
हते तस्मिन्नकुर्वंति तर्जनं मारुतात्मज ॥४०॥
अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणोधर्मसंहितः।
ऋक्षेण गीतः श्लोकोऽस्ति तं निबोध प्लवङ्गम ॥४१॥
न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु संतश्चारित्रभूषणम् ॥४२॥
पापानां वा शुभानां वा बधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥४३॥
लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥४४॥

राजसंश्रित अतएव राजाके अधीन दूसरेकी आज्ञासे करनेवाली ॥ ३६ ॥ इन रावणकी दासियोंपर हे श्रेष्ठवानर कौन क्रोधकरे। विषम भाग्यका दोषसे और पहलेका कियाहुआ बुराकर्मसे ॥ ३७॥ मैं यह क्लेश सब पाती हूं क्यों कि निश्चयकरिके अपना हीं किया भोगता जाता है। हे महाबाहो! ऐसा मत कहो यह दैवी परागति है ॥ ३८ ॥ अपनी दशाके योगसे दुःख पाती हूं यह मुझे निश्चय है यहां दुर्बल मैं रावणकी दासियोंकी सहती हूं ॥ ३९ ॥ हे पवनसुत! यहांपर रावणकी आज्ञापाकर ये राक्षसियां मुझको डराती हैं रावण-

के मरनेपर नही डरवाती है ॥ ४० ॥ वाघका समीपमे यह धर्म-युक्त पुराना श्लोक भालूने गाया है । हे महावीर तुम उसको मुझसे जानो ॥ ४१ ॥ दूसरे पापकर्मवालेके पापको दूसरा नही लेसकता है समयरक्षाकरनेयोग्य है क्या कि सन्त चरित्र भूषण है ॥ ४२ ॥ पापी हो या अच्छे हो या मारनेयोग्य हो परन्तु आर्यपुरुषको दया करना ही चाहिये क्यो कि ऐसा कोई नही है जो कि अपराध न किया हो ॥ ४३ ॥ लोकमे हिंसामे विहार करनेवाले और पापकर्म वाले हिंसक जीवाको पापकरते हुए भी उसका कार्य अशोभन नही है ॥ ४४ ॥ इस प्रकारसे अपनी पहली प्रतिज्ञाके अनुसार अत्यन्त अपराध करनेवाली राक्षसियो को आपने रक्षा की है । इस बिषयमे पराशर भट्टाचार्य्यजी भी कहे है कि—

**मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता ।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सानः सांद्रमहागसः सुखयतु क्षांतिस्तवाकास्मिकी ॥
श्रीगुणरत्नको० श्लो० ५० ।**

हे मातर्मैथिलि तात्कालिक अपराध करनेवाली राक्षसियों को महावीरजो से रक्षाकरनेवाली आपकी कृपाकी अपेक्षा शरणागत जयंत कोवाको और विभीषणको रक्षाकरनेवाले श्रीरामजीकी दया लघु हो

ती है वह आपकी निर्हेतुक कृपा अत्यन्त महापापी मादृशजनोंको सुखी करे ॥ ५० ।' इस प्रकारके दांतका विषयमे जगज्जननी आपकी निःस्वार्थ दयाको जानताभया निर्भय होकर मैं स्तुति को करता हू ॥२॥ अब सिद्धित्रय निर्माता श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी तृतीय श्लोकमें यह कहते है कि परमेश्वरको उत्पत्त्यादिके हेतुत्वकी पूर्ति महालक्ष्मीदेवी जीके कटाक्षके सापेक्ष हैं ।

२ ३
मू०— ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासन्धुक्षणा-
६ २ ७ ८ १ ४
द्रक्ष्यते नष्टं प्राक्तदलाभतस्त्रिभुवनं सम्प्रत्य-
५ १५ १६ १७ १०
नन्तोदयम् । श्रेयो न ह्यरविन्दलोचनमनः
११ १३ १२
कांताप्रसादादृते संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु नृणां
१८ १४
संभाव्यते कर्हिचित् ॥ ३ ॥

टी०— हे जगज्जननि ! (त्रिभुवनम्) स्वर्ग पाताल मृत्युलोक जो यह

समस्त संसार है सो (ईषत्) थोडासा यत्किंचित् (त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासन्धुक्षणात्) प्रणिपातप्रसन्नाक्षिप्रप्रसादिनी आपकी करुणा पूर्वक निरीक्षणरूपअमृतके सिंचन होनेसे, क्यो कि लिखा है कि–

नमामि कमलां क्षान्तिं क्षमां क्षीरोद संभवाम् ।
अनुग्रहपरामृद्धिमनघां हरिवल्लभाम् ॥

अष्टोत्तरसहस्रनामस्तो० ॥

कमला क्षांति क्षमा क्षीरोदसंभवा अनुग्रहपरा ऋद्धि अनघा हरिवल्लभा महालक्ष्मी जी को साष्टांग करता हूं । इस श्लोकमें स्पष्ट अनुग्रहपरा महालक्ष्मी जीका बर्णन है । और मंकणसंहिता मे लिखा है कि—

पद्मे स्थिता पद्मवर्णा पद्मनाभप्रिया शुभा ।
सदानुग्रहसंपन्ना सा मे देवी प्रसीदतु ॥

मंकणसं० ॥

पद्मपरास्थित पद्मबर्णा पद्मनाभप्रिया शुभा सदा अनुग्रहसंपन्ना वह महालक्ष्मी देवी मेरेलिये प्रसन्न हों ।

सामर्ग्यजुर्मयीं देवीं वेदगर्भां मनास्विनीम् ।
लोकेशेशविभूतीनां कारणं यन्निरीक्षणम् ॥

मङ्कणसंहि० ।

साम ऋक् यजुर्मयी वेदगर्भा मनस्विनी महालक्ष्मी देवीको भजो जिसका निरीक्षण नारायण भगवान् की विभूति का कारण है। इस से आपकी करुणापूर्वक निरीक्षणरूप अमृतका सिंचनसे (संप्रति) इस समयमे (अनंतोदयम्) अनन्त उदयवाला होकर (रक्ष्यते) रक्षित होरहा है । क्योंकि इस विषयमे काश्यप कहे है कि—

ब्रह्माद्याश्च सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ।
एधन्ते त्वत्पदच्छायामाश्रित्य कमलेश्वरि ॥

हे कमलेश्वरि देवि ब्रह्मादिक सब देवता और तपोधन मुनिगण आपके चरणारविन्दकी छाया को आश्रयण करके वृद्धिको प्राप्त करते है। जो यह संसार [प्राक्] पहिले आपकी उपेक्षा समयमें (तदलाभतः) आपके करुणा पूर्वक निरीक्षणरूप अमृतके सिंचनके लाभ नही होनेसे [नष्टम्] नष्ट होगया रहा है । इस विषयमें श्रीवत्सांक मिश्रजी भी कहेहै कि—

यस्याः कटाक्षमृदुवीक्षणवीक्षणेन,
सद्यस्समुल्लसितपल्लवमुल्ललास ।
विश्वं विपर्ययसमुत्थविपर्ययं प्राक् ,
तां देवदेवमहिषीं श्रियमाश्रयामः ॥ १० ॥

श्रीस्त० श्लो० १० ॥

जिस महालक्ष्मजीके कारुण्यपूर्ण कोमलकटाक्षपातका वीक्षण से यह संसार शीघ्र ही नवाङ्किशलयके समान उल्लासको प्राप्तकिया है और इससे पहिले आपकी कृपा कटाक्षपातके अलाभ होनेसे यह संसार इस से उलटा नष्ट हो गयाथा उस देव देव महिषी महालक्ष्मी जी को हम सब आश्रयण करते है ॥ १० ॥ (अरविंद लोचन मनः कांत प्रसादात्) कमलके समान नेत्रवाले श्रीमन्नारायणके मन के अति कमनीयरूपगुणादिवाली महालक्ष्मीकी प्रसन्नतासे [ऋते] अतिरिक्त, नारायण भगवान् कमलनयन है । क्योंकि लिखा है कि—

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी ।
छां० प्रपाठ० १ खं० ६ मं० ७ ॥

नारायणके दोनो नेत्र सूर्यका किरणसे खिलाहुआ कमलके समान हैं ॥ ७ ॥ और वेदार्थसंग्रहमे लिखा है कि—

गम्भीराम्भस्समुद्भूतसुमृष्टनालरविकरविकसित पुण्डरीकदलामलायतेक्षणः ॥ वेदा० ॥

गम्भीरजलसे उत्पन्न सुंदरनाललगाहुआ सूर्यका किरणसे विक सित कमलके निर्मलदलके समान विस्तृत नेत्र । और—

पुण्यौपेत पुण्डरीकायताक्षं विष्णुं वंदे सर्वलो- कैक नाथम् ॥ पांडवगी० श्लो० ५ ॥

पुण्यसुक्त कमलके समान आयतनेत्रवाले सब लोकोंके एकही नाथ विष्णुभगवान को मैं अभिवादन या स्तुति करता हूं ॥ ५ ॥ तो कमलनयनका मनकीकाताके प्रसादविना [नृणाम्] नरोंके [संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु] यहांपर संसृतिशब्द पुरुषार्थ समभिव्याहारसे और परिशेष्यसे ऐश्वर्यपरक है तिससे त्रिवर्गान्तभूत सब अभिमत है । तथा अक्षरशब्द तो प्रत्यगात्मा अनुभवपरक है । और वैष्णवाध्वशब्द मतिविशेष द्वारा भगवत्प्राप्तिपरक है । तो संकलित अर्थ यह हुवाकि संसारका ऐश्वर्य कैवल्य भगवत्प्राप्ति भगवत्कैंकर्यके मार्गमे [कर्हिचित्] कभिभी [श्रेयः] श्रेयसुख [न] नहीं [हि] निश्चय करिके [सभाव्यंत] संभव होता है, क्यों कि लिखा है कि—

यामालम्ब्य सुखेनेमं दुस्तरं हि गुणोदधिम् ।
निस्तरन्त्यचिरेणैव व्यक्तध्यानपरायणाः ॥
श्रीसात्वतसं० ॥

व्यक्तध्यानपरायण जन जिस महालक्ष्मी जी को आलम्बनकर दुस्तर गुणोदधि इस संसारको सुखसे जल्दी पार होजाते है। और भी लिखा है कि—

सर्वकामप्रदां रम्यां संसारार्णव तारिणीम् ।
क्षिप्रप्रसादिनीं लक्ष्मीं शरण्यामनुचिंतयेत् ॥

सर्वकामप्रदा रम्या संसारर्णवतारिणी क्षिप्रप्रसादिनी शरण्या महालक्ष्मी जी को चितवन करे। इससे सिद्ध होगया कि महालक्ष्मी जी चितवन करने योग्य है। चतुःश्लोकीके तृतीयश्लोकमे "श्रेय" पद आया है जिसका विषयमे कठोपनिषद्मेलिखा है कि—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैन प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उप्रेयो वृणीते ॥ कठो० अ० १ वल्ली० २ मं १ ॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मंदो योगक्षेमाद्वृणीते ॥ २ ॥

श्रेय अन्य है और अन्य प्रेय है, ये दोनो नाना अर्थमे पुरुष को बांधते है, इन दोनोंमें श्रेयको ग्रहण करनेवालाके अच्छा होता है और जो प्रेयको स्वीकार करता वह शुभ अर्थसे रहित होजाता है ॥ १ ॥ श्रेय और प्रेय मनुष्यको प्राप्त करते है, धीरपुरुष उन दोनों को विचार करता है और निश्चय करिके धीरपुरुष अभिप्रेयसे श्रेय- को अङ्गीकार करता है, और मंदपुरुष योगक्षेमसे प्रेयको स्वीकार

करता है ॥ २ ॥ और भगवद्गीतामे भी लिखा है कि—

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।
भगवद्गी० अ० १ श्लो० ३१ ॥

और संग्राममे स्वजन बंधुको मारकर श्रयको नहीं देखता हूं। ॥ ३१ ॥ पूर्वोक्त श्रय बिना महालक्ष्मी जी की प्रसन्नतासे नहीं प्राप्त होता है। और चतुःश्लोकीके तृतीय श्लोकंम "वैष्णवाध्वसु" पद अया है जिस वैष्णवका विपयमे लिखा है कि—

सुदर्शनं चोर्ध्वपुण्ड्रं प्रधानं वैष्णवं स्मृतम् ।
न लभ्यते वैष्णवत्व मृते चक्रस्य धारणात् ॥
वृद्धहा० अ० ८ श्लो० ६९ ॥

सुदर्शन और ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रधान वैष्णवता है, विना चक्रधारणसे वैष्णवत्व नहीं प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥

ये कंठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नित शंखचक्राः । ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुंड्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥ पाद्म० उत्तरखं० ६ अ० २२४ श्लो० ७० ॥

जिनके गलेमे तुलसीके काठकी और कमलके बीजकी माला

लटकी रहती है तथा जिनके बाहुमूल शंख और चक्रसे चिह्नित हैं और जिनके ललाटपर ऊर्ध्वपुंड्र विराजमान रहता है वे वैष्णव हैं वे शीघ्र ही भुवनमात्रको पवित्र कर देते है ॥ ७० ॥ "वैष्णवमसि" यजुर्वे० अ० ५ मं २१ ॥ तुम वैष्णव हो ॥ २१ ।

' देवतांतरनिवृत्तिपूर्वक भगवच्छेषत्वज्ञानवान् वैष्णवः ॥' वार्त्तामा० वा० २४७ ॥

श्रीमन्नारायणसे अन्यदेवताओंकी निवृत्तिपूर्वक भगवान्के शेषत्वज्ञानवाला वैष्णव होता है ॥ २४७ ॥ इससे सिद्ध होगया कि पूर्वोक्त वैष्णवमार्गमे भी विना महालक्ष्मी जी की प्रसन्नतासे श्रेय का संभव नहीं होता है ॥ ३ ॥ अथ वरदवल्लभा स्तोत्रकर्त्ता श्री यामुनाचार्यस्वामी जी चतुर्थश्लोकमे महालक्ष्मीजीको नारायणकेसाथ सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थामे संश्लिष्टरहनेसे पूर्णघटकत्व कहते हैं ।

२ ३ ४ ५ ६
मू०— शांतानंतमहाविभूति परमं यद्ब्रह्मरूपं
१ १२ १३ ७ ८ ९ १४ १०
हरेर्मूर्तं ब्रह्म ततोऽपि तत्प्रियतरं रूपं यदत्य-
११ १७ १८ १५ १६
द्भूतम् । यान्यन्यानि यथा सुखं विहरतो

१९ २१ २० २६ २३ २४
रूपाणि सर्वाणि ता-न्याहुस्स्वैरनुरूपरूपविभवै-

२५ २२
र्गाढोपगूढानि ते ॥ ४ ॥

टी०—(हरेः) अपने आश्रितों के पापोको हरने वाले नारायणका, क्यों कि हरिका विषयमे लिखा है कि—

हरिर्हरति पपानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥
पांड० श्लो० ६६ ॥

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षर द्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ६७ ॥

दुष्ट चित्तमे भी स्मरण करनेसे हरि सब पापोको हरलेते है । जैसे इच्छा न होते हुवे भी अग्नी छुनेसे जलाही देता है ॥ ६६ ॥ एकवार भी जिसने हरि इन दोअक्षरोको उच्चारण किया उसने मानो मोक्षको जानेकेलिये कमर बांध लिया है ॥ ६७ ॥ अथवा "हरेः" इसका यह अर्थ है कि ब्रह्मादिक देवों को संहार करनेवाले, क्यों कि लिखा है कि—

ब्रह्माणमिंद्रं रुद्रं च यमं वरुणमेव च ।
निगृह्य हरते यस्मात्तस्माद्धरिरितीर्यते ॥

ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, यम और वरुणको निग्रह कर जिससे हरते है तिससे हरि ऐसा कहे जाते है । इस नारायण भगवान् का (शांतानंत महाविभूति) अशनादिक ऊर्मियो से ओ अपक्षयादिक विकारोसे रहित अर्थात् शांति, और देश काल वस्तुकृत त्रिविध परिच्छेदरहित अनन्त्र, तथा त्रिपाद् विभूति और लिला विभूति, क्यो कि लिखा है कि——

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥
यजु० अ० ३१ मं० ३ ।

यह जो कुछ संसार जीवो के सहित है सो इस परमात्माकी एकपाद विभूति है, और दिव लोकमें मोक्षरूप अमृत त्रिपाद् विभूति है ॥ ३ ॥ ये दो विभूति विशिष्ट (परमम्) सब चेतन और अचेतनसे उत्कृष्ट (यद्) जो सब उपनिषद् प्रसिद्ध [ब्रह्म] वृहत्त्व वृंहणत्व विशिष्ट [रूपम्] स्वरूप है, ब्रह्मका विषयमे लिखा है कि——

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च तस्माद्ब्रह्मेति विश्रुतः ।

बृहत्व और बृंहणत्व होनेसे ब्रह्म ऐसा विश्रुत है । और——

‘ अक्षरं ब्रह्मपरमम् ’ भगवद्गी० अ० ८ श्लो० ३ ।

अविनाशि परब्रह्म है ॥ ३ ॥

अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥

गी० अ० १३ श्लो० १२ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥
सर्वेंद्रियगुणाभासं सर्वेंद्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४॥
बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत् ॥१५॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णुप्रभविष्णु च ॥१६॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥१७॥

वह आदिरहित परब्रह्म अकथनीय होनेसे न सत् नतो असत् कहा जाता है ।' १२ ॥ वह परब्रह्म सब ओरसे हाथ पैरवाला एवं सब ओरसे आंख शिर और मुखवाला तथा सब ओरसे कानवाला है, क्योंकि वह संसारमे सबको व्याप्त करके स्थित है ॥ १३ ॥

संपूर्ण इंद्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है परंतु वास्तवमें सर्वइंद्रियों से रहित है तथा आसक्ति रहित और प्राकृतगुणोसे रहित निश्चय कर अपनी योगमायासे सबको धारण पोषण करनेवाला और गुणो को भोगनेवाला है ॥ १४ ॥ तथा वह परमात्मा चर अचर सब जीवोंके बाहर भीतर परिपूर्ण है और चर अचर स्वरूप भी है तथा वह सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमे नहीं आता है और ज्ञानी पुरुषोंके अती समीपमे तथा अज्ञानी पुरुषोंके दूरमे वह रहता है ॥ १५ ॥ और वह विभाग रहित एक रूपसे आकाशके समान परिपूर्ण हुआ भी चर अचर संपूर्ण जीवोंमे पृथक् पृथक् के सदृश स्थित प्रतीत होता है तथा वह जानने योग्य परमात्मा विष्णुरूपसे जीवोंको धारण पोषण करनेवाला और संकर्षणरूपसे संहार करनेवाला तथा प्रद्युम्न रूप से सबके उत्पन्न करनेवाला है ॥ १६ ॥ और वह परमात्मा अग्नि आदि ज्योतियों का भी ज्योति एवं मायासे परे जाता है, तथा वह ब्रह्मज्ञान स्वरूप और जाननेयोग्य है, एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्तहोनेवाला और सबके हृदयमे स्थित है ॥ १७ ॥ और तैत्तिरीयोपनिषद् मे लिखा है कि—

यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म ॥ तैत्ति० भृगुव० ३ अनु० १ ॥

जिससे ये संपूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं जो समस्त जीवोंकी

रक्षा और संहार करता है तथा जिससे मोक्षको प्राप्त करते हैं उसको जाननेकी इच्छाकरो वही ब्रह्म है ॥ १ ॥ और वेदांत दर्शनमें भी लिखा है कि---

जन्माद्यस्य यतः ॥ वेदा० अ० १ पा० १ सू० २ ॥

जिससे सब संसार की उत्पत्ति पालन संहार और मोक्ष होता है वही ब्रह्म हैं ॥ २ ॥ इस प्रकारके वेदांत प्रसिद्ध ब्रह्मादिव्यात्म स्वरूप है । [ततः] तिस ज्ञानानन्दात्मक दिव्यात्म स्वरूप से [अपि] भी [तत्प्रियतरम्] तिस श्रीमन्नारायणके अत्यन्त प्रिय [यद्] जो श्रुति स्मृतिपंचरात्रादि शास्त्र प्रसिद्ध [अत्यद्भूतम्] संनिवेशगुण प्रभावादि करके अत्यन्त आश्चर्य कर [मूर्त्तम्] स्पर्शरूपादियुक्त परंपद पर्यंकादि देश परिच्छेदयुक्त मूर्त्त [ब्रह्म] बृहत्व विशिष्ट (रूपम्) दिव्यमंगल विग्रह स्वरूप है । और [यथा सुखम्] यथा सुख [विहरतः] विहार करनेवाले श्रीहरिके [यानि] जो [अन्यानि] पर वासुदेवसे अन्य विलक्षण [रूपाणि] प्रद्युम्न अनिरुद्धादिरूप हैं । क्यो कि प्रद्युम्नादिक का विषय मे लिखा है कि---

व्यूहावस्थासु तिष्ठत्सु गुणद्वयमधिष्ठितम् ।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च तथा संकर्षणो विभुः ॥

पराशरी. उत्तरखं. अ. ६ श्लो. ६८ ॥

जगत्सृष्टिस्थितिलयान्कुर्वाणा गुणभेदतः ।
ऐश्वर्यवीर्यवान्सर्वं प्रद्युम्नः प्रत्यपद्यत ॥ ६९ ॥
तेजः शक्तीः समाविश्य ह्यनिरुद्धोऽप्यपालयत् ।
ज्ञानवान्बलवाँल्लोकानग्रसत्संकर्षणोऽव्ययः ॥७०॥

तीनो व्यूहावस्थाओमे रहते हुए गुणद्वयअधिष्ठित प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध और संकर्षण विभु है ॥ ६८ ॥ तीनोगुणके भेदसे संसार को उत्पत्ति तथा पालन और संहारको करते है, और ऐश्वर्य तथा वीयसे युक्त प्रद्युम्नरूप समस्त संसारको उत्पन्न करता है ॥ ६९ ॥ और तेज तथा शक्तियुक्त अनिरुद्धरूप निश्चयकरके संसारका पालन करता है, और ज्ञान तथा वलयुक्त विकाररहित संकर्षणरूप संपूर्ण संसारका संहार करता है ॥ ७० ॥ और नारायणका रूपका विषय मे लिखा है कि—

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय । इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥ ऋग्वे. मं. ६ अ. ४ सू. ४७ मं. १८ ॥

परमेश्वर अपने अनंत सामर्थ्योसे अनेकरूपवाला होता है, सो इस अपने रूपकोसब भक्तोपर विख्यात करनेके लिये जैसा २ रूप की इच्छा हो तैसा २ हुआ निश्चय परमेश्वरके रूप सैकडो है, तिस

दश अवतार मुख्य है ॥ १८ ॥ इस पूर्वोक्त प्रकारके जो अनंतस्वरूप है (तानि) उन (सर्वाणि) सब परव्यूह विभवादि स्वरूपोंको (ते) वे वेदविदग्रेसर वाल्मीकि पराशरादि महर्षिलोग (स्वैः) स्वकीय (अनुरूप रूप विभवैः) असाधारण भगवदभिमत स्वरूप स्वभाव विग्रहादिरूपवैभवो से [गाढोपगूढानि] गाढ उपगूढ अर्थात् वियोगके अयोग्य [आहुः] कहे है । इस विषयमे लिखा है कि—

महालक्ष्मीर्देवेशस्य भिन्नाभिन्नरूपा चेतनाचेतनात्मिका ब्रह्मस्थावरात्मा तद्गुणकर्मविभागभेदाच्छरीररूपा देवर्षिमनुष्यगन्धर्वरूपा ॥ सीतोपनि. ॥

महालक्ष्मी देवी नारायणके भिन्नाभिन्नस्वरूपा तथा चेतनाचेतनात्मिका और ब्रह्मस्थावरात्मा है, और नारायणके गुण और कर्मके विभागका भेदसे जैसा देव या ऋषि या मनुष्य या गन्धर्वका स्वरूप होता है वैसा हि रूपधारणकरती है ॥

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ।
वाल्मी० सुं. ५ स. २१ श्लो. १५ ॥

जैसे सूर्यका साथ प्रभा नही छोडती है तैसे ही श्रीरामजीका साथ मै नही छोडती हूं ॥ १५ ॥ और श्रीविष्णु पुराणमे लिखा है की—

देवत्वे देवदेहेयं मानुषत्वे च मानुषी ।

विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥ विष्णु.

नारायणके देवरूपधारणकरनेपर महालक्ष्मीजी देवीरूप धारण करती है, और मनुष्यरूप धारणकरनेपर मनुष्यरूप धारण करती हैं। यह श्रीदेवी अपने रूपके विष्णु के देह के सदृश वनाती है।

"ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः"।

चन्द्रमा की चांन्दनी के समान देवी है ॥ इन प्रणाणों से सिद्ध हो गयाकी महालक्ष्मीजी सर्वदा नारायणके समीप घटक होकर रहती हैं। इससे उस जगज्जननी के पुरुषकार अवश्य हम सबोंको करना चाहिये ॥ ४ ॥

अव यह चतुश्लोकी श्रीकांची पुरी मे करिशैलपर विराजमान श्री वरद राज भगवान्‌की दयिता बरद वल्लभाजीके विषय में है इस बातको जनानेके लिये स्तोत्ररत्न कर्त्ता श्री यामुनाचार्य्य स्वामिजी पांचवां श्लोकमें वरद वल्लभाजीको वंदना करते है ॥

१ २

मू०—आकारत्रयसंपन्नामरविंदनिवासिनीम् ।

३ ५ ४

अशेषजगदीशित्रीं वंदे वरदवल्लभाम् ॥५॥

इति यामुनमुनिप्रणीतं वरदवल्लभा स्तोत्रम् ।

टी०—(अकारत्रयसंपन्नाम्) कृपापारतंत्र्य और अन्यन्यार्हत्व-रूप तीन आकारोसे युक्त, क्यो कि लिखा है कि—

लक्ष्म्याः प्रथमविश्लेषः स्वकृपाप्रकाशनार्थम् ।
श्रीवचन. सू. ९ ।

पंचवटीमे सीतारूपधारिणी लक्ष्मीजीका श्रीरामावतार धारण करनेवाले नारायण भगवान् से पहला विश्लेप अपनी कृपा को प्रगट करनेकेलिये हुआ ॥ ९ ॥ राक्षसियोका विषयमे देखाजाता है कि रावणका वद्ध होनेपर शुभवृत्तांत सुनानेकेलिये आयेहुए महावीरजीके राक्षसिओको चित्रबध करनेकेलिये मुझे सौंप दो ऐसा कहा तब श्री-अम्बाजीने कहा कि—

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा ।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥
वाल्मी. युद्ध. ६ स. ११५ श्लो. ४३ ।

पापी होया आच्छे हो या मारनेयोग्य हो परंतु आर्यपुरुषको दयाकरना हीं चाहिये, क्यो कि ऐसा कोई नाहीं है जिसमे अपराध न किया हो ॥ ४३ ॥ इस से सिद्ध होगया कि श्री अम्बाजी की कृपा एक आकार है । और—

मध्यमविश्लेषः पारतंत्र्यप्रकाशनार्थम् ।

श्रीवचन. सू. १० ।

वाल्मीकी महर्षिके आश्रमका पासमे श्री सीता और श्रीराम-जीसे मध्यम विश्लेष पारतंत्र्यको प्रगट करनेकेलिये हुआ ॥ १० ॥ श्री लक्ष्मणजीके द्वारा तपोवनमें छोडनेके समय श्रीसीताजी कहीं हैं कि—

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले ।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥

वाल्मी. उत्त. ७ स. ४८ श्लो. ८ ।

हे श्री लक्ष्मण ! मेरे स्वामी से प्राप्त जो मेरे गर्भमें राजकुमार है वह मेरे मरनेसे मरजायेगा तो स्वामीका वंश नाश हो जायेगा तो जिससे स्वामीका वंश नाश न हो इसलिये मै प्राणोको आज गंगाके प्रवाहमे परित्याग नही करती हूं ॥ ८ ॥ इससे सावित होगया कि श्रीअंबाजीके पारतंत्र्य एक आकार है और—

अनंतरविश्लेषोऽनन्यार्हत्वप्रकाशनार्थम् ।

श्रीवचन. सू. ११ ।

नैमिषारण्यमें श्रीसीता और श्रीरामजीसे तीसरा वाल्मीकि महर्षिके आश्रमसे लौटकर श्रीरामजीकी सान्निधिमें पृथ्वीमे प्रवेश करना अनन्यार्हत्वको प्रगट करनेके लिये हुआ ॥ ११ ॥ क्योकि लिखा

है कि काषायवस्त्र पहिनीहुई श्रीसीताजी आये हुए सब ऋषियों को देखकर नीचे पृथ्वीको देखतीहुई हाथ जोडकरके इस बातको कहीं—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिंतये ।
तथामे माधवीदेवी विवरं दातुमर्हसि ॥

वाल्मी. उत्त. ७ स. ९७ श्लो १४ ।

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथामे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ १५॥

यदि मैं श्रीरामजीसे अन्य किसी को मनसेभी स्मरण नकिया हो भूमी देवी विवर देगी ॥ १४ ॥ यदि मन वचन और देहसे श्रीराम जीको ही मैं पूजन किया हो तो भूमिदेवी मुझको विवर देगी ।१५। इस प्रकारके शपथ करनेपर रत्नसिंहासनपर बैठाकर स्वागतकरिके भूमिदेवी श्रीअम्बाको रसातलमे लेगयी । इससे सिद्ध होगया कि श्रीअंबाजी के अन्यन्यार्हत्वरूप तीन आकारोसे युक्त अथवा अन्यन्यार्हशेषत्व तथा अनन्यभोग्यत्व और अनन्य शरणत्वरूप तीन आकारोसे युक्त, क्योंकि बृद्धहारीस्मृतिमें लिखा है कि—

विष्णोरनन्यशेषत्वं तथैवानन्यसाधनम् ।
तथैवानन्यभोग्यत्वमाकारत्रयमुच्यते ॥

बृद्धहा. अ. ११ श्लो. १४९ ।

श्रीविष्णुके अनन्यशेषत्य तथा अनन्य शरणत्व और अनन्य भोग्यत्व इनको आकारत्रय कहते हैं ॥ १४९ ॥ इन पूर्वोक्त तीन आकारोंसे युक्त [अरविंदनिवासिनीम्] कमलमें निवास करनेवाली क्योंकि लिखा है कि–

पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् । श्रीसू. मं ४ ॥

कमलमें स्थित कमलवर्णा उस श्रीदेवीको यहांपर मै बुलाता हूं ॥४॥ और भी लिखा है कि—

पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ॥ लक्ष्मीसू. मं. ८ ।

इस मंत्रमे स्पष्ट "पद्मप्रिये" पद आया है । इससे कमलमें निवास करनेवाली (अशेषजगदीशित्रीम्) समस्त संसारकी स्वामिनी क्योंकि लिखा है कि–

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वे श्रियम् । श्रीसू.मं.९

सब भूतोकी स्वामिनी उस श्रीदेवीको यहांपर मै बुलाता हूं।२। तो संपूर्ण संसार के नियमनकरनेवाली [वरदवल्लभाम्] कांचीस्थ वरदराजभगवान्की वल्लभा पेरुं देवी लक्ष्मीजी को [वंदे] मै यामुनाचार्य्य अभिवादन या स्तुति करता हूं। श्री वरदराजजी का विषयमे लिखा है कि—

चैत्रमासे सितपक्षे चतुर्दश्यां तिथौ मुने ।
शोभने हस्तनक्षत्रे रविवारसमन्विते ॥ १ ॥
वपाहोमे प्रवृत्ते तु प्रातःसवनकालिके ।
धातुरुत्तरवेद्यां तु प्रादुरासीज्जनार्दनः ॥ २ ॥
वपापरिमलोल्लासलासिताधरपल्लवम् ।
मुखं वरदराजस्य मुग्धस्मितमुपास्महे ॥ ३ ॥

हे मुने ! चैत्रमास शुक्लपक्ष चतुर्दशी तिथि शोभन योग रवि-वारके हस्त नक्षत्र आनेपर ॥ १ ॥ प्रातः सवनकालिकवपाहोमप्रवृत्त होनेपर तो ब्रह्मा के उत्तर वेदी में जनार्दन वरदराज भगवान् प्रगट हुवे ॥ २ ॥ वपाकापरिमलके उल्लास से लासित अधर पल्लव तथा मुग्ध स्मित वरदराजके मुखारविंदको हम सब उपासना करते हैं ॥ ३ ॥ और भी लिखा है कि----

यस्य प्रसादकलया बधिरः शृणोति, पंगुः प्रधावति जवेन च वक्ति मूकः । अंधः प्रपश्यति सुतं लभते च वंध्या, तं देवमेव वरदं शरणं गतोऽस्मि ॥

जिस वरदराज के प्रसाद की कलासे बधिर सुनता है, तथा लंगडा जोरसे दौडता है और गूंगा बोलता है तथा अन्धा देखता है और वांझ पुत्रको प्राप्त करती है, उस वरदराज देवको निश्चय

करके शरण प्राप्त किया हूं। इस प्रकारके वरदराज भगवान्की वल्लभा को मै वन्दना करता हूं ॥ ५ ॥

सिंहमासे सितपक्षे मध्याह्ने कश्यपान्वये ।
द्वादश्यां हि स्वयं जातः वामनः श्रीविवर्द्धनः ॥१॥

श्रीवत्सवंशकलशोदधिपूर्णचंद्रम् ,
श्रीकृष्णसूरिपदपंकजभृङ्गराजम् ।
श्रीरङ्गवेङ्कटगुरूत्तमलब्धबोधम् ,
भक्त्या भजामि गुरुवर्य्यमनंतसूरिम् ॥ २ ॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य वेदांतप्रवर्त्तकाचार्य श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य सत्संप्रदायाचार्य जगद्गुरुभगवदनंतपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यस्वामिना प्रणीता "भावप्रकाशिका" नामधेया वरदवल्लभास्तोत्रभाषाटीका समाप्ता ।

समाप्तमिदं स्तोत्रम् ॥

